

## श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 6: विराट-शरीर का प्राकट्य

13 September 2026

### 🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



सृष्टि के तेईस असम्बद्ध तत्त्वों में से, जो अपने बल पर सृष्टि-कार्य आरम्भ करने में भी असमर्थ थे, भगवान् काल की शक्ति धारण करते हैं और — मानो एक हाथ अनेक अलग-अलग अंगुलियों को समेटकर मुट्ठी बना लेता हो — उनसे एक विशाल, तेजोमय विराट-शरीर प्रकट करते हैं, वही ढाँचा जिससे इन्द्रियाँ, लोक तथा मनुष्य-समाज के चारों वर्ग, समय आने पर, उत्पन्न होंगे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पंचम अध्याय का समापन देवताओं की अपनी असहायता की स्वीकारोक्ति पर हुआ था: महत्तत्त्व तथा सृष्टि के अन्य कच्चे तत्त्वों के अधिष्ठाता देवता, आपस में सहयोग करने में असमर्थ, भगवान् से यह दिखाने की प्रार्थना कर रहे थे कि सृष्टि का आरम्भ कैसे हो। ऋषि मैत्रेय, विदुर से अपनी कथा जारी रखते हुए, वर्णन करते हैं कि किस प्रकार भगवान् काल की अपनी शक्ति धारण करते हैं, पदार्थ के तेईस असम्बद्ध तत्त्वों में प्रवेश करते हैं, और उन्हें एक तेजोमय समग्रता में समेट लेते हैं: विराट-शरीर, वह विश्व-रूप जिससे प्रत्येक इन्द्रिय एवं उसका अधिष्ठाता देवता, प्रत्येक लोक, तथा मनुष्य-समाज का चतुर्वर्ण भी उत्पन्न होगा। यह अध्याय ब्रह्माण्ड-विज्ञान को भक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है — क्योंकि मैत्रेय विराट-शरीर का वर्णन किसी वैज्ञानिक की भाँति एक यन्त्र के रूप में नहीं करते; वे उसे गाते हैं, स्वीकार करते हैं कि वे उसे पूर्णतः नहीं गा सकते, और अन्त में उस महिमा के सम्मुख नतमस्तक होते हैं जिसे स्वयं ब्रह्मा भी सहस्र दिव्य वर्षों के ध्यान में नहीं समझ सके।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 6 (षष्ठ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: विराट-शरीर का प्राकट्य
- मुख्य वक्ता: ऋषि मैत्रेय, विदुर को सम्बोधित करते हुए — यह सम्पूर्ण कथा श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को, तथा सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य की सभा को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: मैत्रेय का आश्रम, विदुर को सृष्टि की उत्पत्ति पर चल रहे प्रवचन में
- मुख्य विषय: भगवान् द्वारा काल की शक्ति धारण करना, सृष्टि के तेईस तत्त्वों में उनका प्रवेश, तथा विराट-शरीर का प्राकट्य — वह विश्व-रूप जिससे इन्द्रियाँ, उनके अधिष्ठाता देवता, तीनों लोक तथा चारों वर्ण उत्पन्न होते हैं
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 6, श्लोक 1-40
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

## भगवान् काल की शक्ति धारण करते हैं

मैत्रेय उसी कठिनाई को सुलझाते हुए आरम्भ करते हैं जो देवताओं ने पिछले अध्याय के अन्त में उठाई थी। उनकी शक्तियाँ — महत्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रियाँ, तत्त्व — बिखरी हुई तथा असहयोगी पड़ी थीं, प्रत्येक एक ऐसा खण्ड जो सम्मिलित कार्य में असमर्थ था। यह देखकर, सर्वशक्तिमान् भगवान् ने काल नामक अपनी दिव्य शक्ति धारण की और साथ ही साथ सृष्टि के सभी तेईस तत्त्वों में प्रवेश किया: महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, पाँच सूक्ष्म तत्त्व, तथा पाँच स्थूल तत्त्व।

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः ।

प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥ १ ॥

कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः ।

त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥ २ ॥

*iti tāsāṃ sva-śaktīnāṃ satīnām asametya saḥ prasupta-loka-tantrāṇāṃ niśāmya gatim īśvaraḥ  
kāla-saṁjñāṃ tadā devīm bibhrac chaktim urukramāḥ trayaviṁśati-tattvānāṃ gaṇaṃ yugapad  
āviśat*

अर्थ: जब सर्वशक्तिमान् भगवान् ने देखा कि उनकी अपनी शक्तियाँ सृष्टि-कार्य आरम्भ करने में असमर्थ हैं, क्योंकि उनमें परस्पर सामंजस्य नहीं था, तो उन्होंने काल-शक्ति का रूप धारण करके तेईस तत्त्वों के समूह में एक ही क्षण में प्रवेश कर लिया। (स्कन्ध 3, अध्याय 6, श्लोक 1-2)

यह बाहर से लगाया गया बल नहीं है; यह भीतर से प्रविष्ट होने वाली उपस्थिति है। इन असम्बद्ध तत्त्वों में प्रवेश करके, भगवान् अपनी सक्रिय शक्ति से उन्हें एक साथ जोड़ते हैं, उनकी सुप्त ऊर्जा को उद्दीप्त करते हुए। इस प्रकार सक्रिय होकर, ईश्वर द्वारा प्रेरित तेईस तत्त्व — अपनी स्वयं की क्षमता से नहीं — अपने ही अंशों से विराट-शरीर को विकसित करते हैं। मैत्रेय यहाँ अपने शब्दों के प्रति सावधान हैं: ऐसा नहीं कि परमेश्वर विराट-शरीर को एक पृथक् वस्तु के रूप में रचते हैं; बल्कि, जैसे ही वे उनमें प्रवेश करते हैं, सृष्टि-कार्य का भार उठाने वाला यह तेईस तत्त्वों का समूह, अपने नवीन सम्भव सहयोग के परिणामस्वरूप, आंशिक रूप से रूपान्तरित हो जाता है — और तेईस तत्त्वों का यही रूपान्तरण विराट-शरीर कहलाता है, समस्त चराचर सृष्टि का आश्रय।



अपनी शक्तियों को बिखरा हुआ तथा असहयोगी देखकर, भगवान् काल की शक्ति धारण करते हैं और सृष्टि के तेईस असम्बद्ध तत्त्वों में प्रवेश करते हैं, उन्हें सामंजस्य में लाते हुए (श्लोक 1-5)।

## विराट पुरुष प्रलय-जल में विराजते हैं

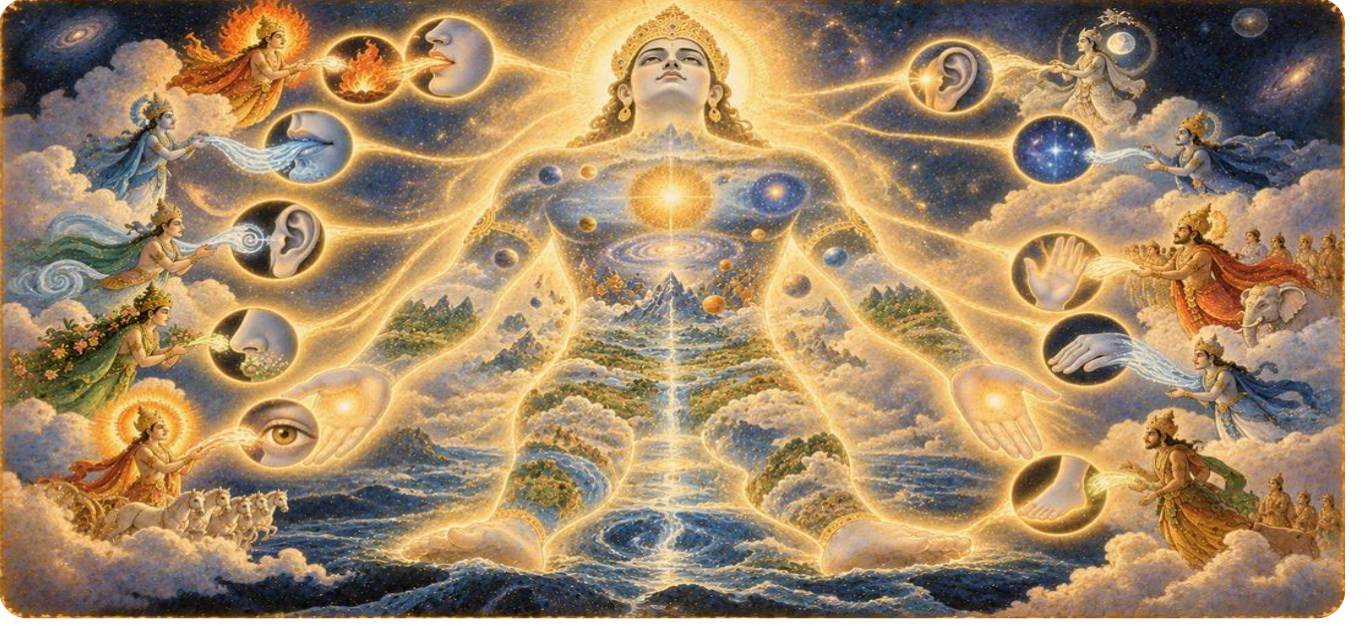
वह सर्वतेजोमय विराट पुरुष, अपने भीतर अव्यक्त अवस्था में सुप्त पड़े समस्त जीवों सहित, एक सहस्र दिव्य वर्षों — मैत्रेय की गणना से 3,60,000 मानव वर्षों — तक, अण्डे के भीतरी भाग के समान आकार वाले उस स्थान में, जो चारों ओर जल से घिरा है, निवास करते हैं। ज्ञान, क्रिया तथा भोग-शक्ति से पूर्व से ही युक्त, यह विराट-शरीर स्वतः एक रूप में — हृदय; दस रूपों में — दस प्राणवायु; तथा तीन रूपों में — अध्यात्मिक, अधिदैविक तथा अधिभौतिक पक्षों में, अर्थात् दैहिक अस्तित्व के व्यक्तिगत, दैविक तथा भौतिक आयामों में — प्रकट होता है। समस्त जीवों की समष्टि रूप में, वे समस्त प्राणियों के आत्मा तथा आधार हैं; एक देहधारी आत्मा के रूप में, वे परमात्मा के अंश-प्रकटीकरण हैं; तथा सत्य के प्रथम प्रकटीकरण के रूप में, वे आदि-अवतार हैं — वह साँचा, मैत्रेय कहते हैं, जिसमें समस्त जीव-सृष्टि अपना आकार लेती है।

## इन्द्रियाँ तथा उनके अधिष्ठाता देवता प्रकट होते हैं

देवताओं की पूर्व प्रार्थना का स्मरण करते हुए, इन्द्रियातीत भगवान् अपने ही तेज से — अपनी ही चेतना से — विराट पुरुष को प्रकाशित करते हैं, उनके भीतर सुप्त सामर्थ्यों को जागृत करते हुए। इसके पश्चात् जो आता है वह सम्पूर्ण भागवत के सबसे उल्लेखनीय प्रसंगों में से एक है: श्लोक-दर-श्लोक, मैत्रेय विराट-शरीर पर प्रत्येक इन्द्रिय के, एक-एक करके, तथा उसके अधिष्ठाता देवता के, जो उसमें प्रवेश करता है, प्राकट्य का वर्णन करते हैं।

एक मुख प्रकट होता है, और अग्निदेव उसमें वाक्-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। एक तालु प्रकट होता है, और जल के अधिपति वरुण उसमें रस-ज्ञान की शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। नासिका-युगल प्रकट होता है, और दिव्य वैद्य अश्विनीकुमार उसमें गन्ध-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। नेत्र-युगल प्रकट होता है, और सूर्यदेव त्वष्टा उसमें दृष्टि-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। स्पर्श-इन्द्रिय का आश्रय त्वचा प्रकट होती है, और वायुदेव उसमें स्पर्श-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। कर्ण-युगल प्रकट होता है, और दिशाओं के अधिष्ठाता दिग्देवता उसमें श्रवण-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। त्वचा पुनः प्रकट होती है, इस बार रोमों के आश्रय के रूप में, और वार्षिक औषधियों के अधिष्ठाता देवता उसमें प्रवेश करते हैं, जो कण्डू-अनुभूति का स्रोत है। जननेन्द्रिय प्रकट होती है, और स्वयं प्रजापति उसमें सन्तानोत्पत्ति की सामर्थ्य के साथ प्रवेश करते हैं। मलद्वार प्रकट होता है, और मित्र देव उसमें मल-त्याग की शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। हस्त-युगल प्रकट होता है, और स्वर्ग के अधिपति इन्द्र उसमें ग्रहण तथा त्याग की सामर्थ्य के साथ प्रवेश करते हैं, जिससे जीव अपनी जीविका चलाता है। चरण-युगल प्रकट होता है, और स्वयं भगवान् विष्णु उसमें गति-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं, जिससे जीव अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचता है।

फिर आती है अन्तःकरण की बारी। बुद्धि प्रकट होती है, और वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के स्वामी ब्रह्मा उसमें बोध-शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं। हृदय प्रकट होता है, और चन्द्रदेव उसमें मन के साथ प्रवेश करते हैं, जो समस्त प्रकार के विचारों का स्रोत है। अहंकार प्रकट होता है, और रुद्र उसमें “मैं” की भावना, कर्तृत्व के बोध के साथ प्रवेश करते हैं। और अन्त में चित्त, चिन्तन का आश्रय, प्रकट होता है, और ब्रह्मा पुनः — इस बार महत्तत्त्व, स्वयं सामूहिक बुद्धि के अधिष्ठाता देवता के रूप में — उस शक्ति के साथ प्रवेश करते हैं जो उचित-अनुचित का विवेक करती है।



एक-एक करके, विराट पुरुष की इन्द्रियों तथा उपकरण प्रकट होते हैं — मुख, नेत्र, कर्ण, हाथ, पैर, मन, अहंकार — और उनके अधिष्ठाता देवता, अग्नि, वरुण, अश्विनीकुमार, इन्द्र, विष्णु तथा अन्य, प्रत्येक में बारी-बारी से प्रवेश करते हैं, प्रत्येक वह शक्ति प्रदान करते हुए जिससे व्यक्ति जीव अनुभव करता है, कार्य करता है तथा सोचता है (श्लोक 12-26)।

## विराट पुरुष से स्वर्ग, पृथ्वी तथा आकाश उत्पन्न होते हैं

इस पूर्णतः निर्मित विराट पुरुष से, तीनों लोक स्वयं आकार लेते हैं। उनके शीश से स्वर्ग-लोक उत्पन्न होता है; उनके चरणों से पृथ्वी; तथा उनकी नाभि से आकाश — स्वर्ग तथा पृथ्वी के बीच का अन्तराल। प्रत्येक क्षेत्र में तीन गुणों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी निवास करते हैं: सत्त्व के विकार देवता स्वर्ग में निवास करते हैं; रज के विकार मनुष्य तथा उनके लिए उपयोगी प्राणी पृथ्वी पर निवास करते हैं; तथा तम के विकार रुद्र के अनुचरगण — भूत-प्रेत आदि — उन दोनों के बीच के आकाश में, ठीक विराट पुरुष की नाभि के स्थान पर, निवास करते हैं।

शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ।

गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥ २७ ॥

*śīrṣṇo 'sya dyaur dharā padbhyāṁ khaṁ nābher udapadyata guṇānāṁ vṛttayo yeṣu pratīyante surādayaḥ*

अर्थ: उनके शीश से स्वर्ग-लोक, चरणों से पृथ्वी, तथा नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ। इन क्षेत्रों में देवता तथा अन्य प्राणी पाए जाते हैं, जो क्रमशः सत्त्व, रज तथा तम के विकार हैं। (स्कन्ध 3, अध्याय 6, श्लोक 27)



विराट पुरुष के शीश से स्वर्ग, चरणों से पृथ्वी, तथा नाभि से आकाश — दोनों के बीच के भूतगणों का आश्रय — उत्पन्न होता है, प्रत्येक लोक सत्त्व, रज तथा तम से उत्पन्न प्राणियों का घर बनता है (श्लोक 27-29)।

## विराट-शरीर से चारों वर्ण उत्पन्न होते हैं

जैसे लोक तथा इन्द्रियाँ विराट पुरुष से उत्पन्न होती हैं, वैसे ही मनुष्य-समाज का चतुर्वर्ण भी उत्पन्न होता है — यह कोई मनमाना सामाजिक विधान नहीं है, मैत्रेय बल देते हैं, अपितु स्वयं भगवान् के रूप का प्रत्यक्ष उद्भव है। विराट पुरुष के मुख से स्वयं वेद उत्पन्न होते हैं, तथा साथ ही ब्राह्मण — किसी जन्मसिद्ध स्थिति के कारण नहीं, मैत्रेय स्पष्ट करते हैं, अपितु उसी मुख के वेद-ज्ञान के प्रति उस सहज झुकाव के कारण, जो अकेले ही उसे वर्णों में सर्वप्रथम तथा शेष का स्वाभाविक गुरु ठहराता है। भुजाओं से रक्षा तथा शासन की वृत्ति उत्पन्न होती है, तथा क्षत्रिय जो उसमें समर्पित है — भगवान् विष्णु की एक किरण, मैत्रेय कहते हैं, जो अन्य वर्णों की चोरों तथा डाकुओं से रक्षा हेतु जन्मा है। जाँघों से कृषि तथा अन्य वे व्यवसाय उत्पन्न होते हैं जो संसार की खाद्य-आपूर्ति को बनाए रखते हैं, तथा वैश्य जो उनका अनुसरण करता है, सम्पूर्ण मानवता के लिए जीविका जुटाते हुए। तथा चरणों से सेवा की वृत्ति उत्पन्न होती है, जो प्रत्येक पावन कर्तव्य के निर्वहन के लिए अनिवार्य है, तथा शूद्र जो उसी वृत्ति के लिए उत्पन्न हुआ — उसका व्यवसाय, मैत्रेय विशेष रूप से बताते हैं, स्वयं भगवान् के सन्तोष का साधन है।

अपने ही हृदय की शुद्धि के लिए, मैत्रेय कहते हैं, चारों वर्ण अपने-अपने कर्तव्यों के श्रद्धापूर्ण निर्वहन द्वारा अपने समान पिता, श्रीहरि, की आराधना करते हैं — वे ही कर्तव्य जो उनके साथ ही उनके शरीर से उत्पन्न हुए थे।

इस उत्पत्ति-सूची के भीतर एक स्पष्ट शिक्षा निहित है, जिस पर परम्परा सीधे बल देती है। विराट पुरुष के मुख, भुजाओं, जाँघों अथवा चरणों से प्रतीकात्मक रूप से उत्पन्न होना एक वृत्ति तथा एक आन्तरिक स्वभाव को दर्शाता है, केवल कुल से निश्चित किसी जन्मसिद्ध अधिकार को नहीं। मैत्रेय स्पष्ट करते हैं कि वेद-ज्ञान के प्रति झुकाव है, न कि किसी ब्राह्मण-पिता से जन्म, जो वास्तव में किसी को मुख पर स्थान देता है; इसी प्रकार रक्षा, आपूर्ति अथवा सेवा का वास्तविक निर्वहन ही — जन्म की संयोगिकता नहीं — किसी को क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बनाता है। और चारों को केवल उनके पृथक् स्थानों तक सीमित नहीं छोड़ा गया है: वर्णों पर मैत्रेय का समापन-वचन यह है कि अनन्त जीवन तथा आत्म-साक्षात्कार केवल किसी सच्चे गुरु के मार्गदर्शन में भगवान् की आराधना से ही प्राप्त होते हैं — शुद्धि का वह एकमात्र मार्ग जो प्रत्येक वृत्ति तथा प्रत्येक जन्म में समान है (श्लोक 30-34)।



विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जाँघों से वैश्य, तथा चरणों से शूद्र — चारों सामाजिक वर्ग तथा उनके व्यवसाय, प्रत्येक उसी दिव्य रूप का एक उद्भव (श्लोक 30-34)।

## मैत्रेय का आश्चर्य-स्तवन

यह असाधारण वर्णन पूर्ण करने के पश्चात्, मैत्रेय अध्याय के अन्तिम श्लोकों में वर्णन से स्वीकारोक्ति की ओर मुड़ते हैं। वे विदुर से पूछते हैं — उस भगवान् के विराट-शरीर का सम्पूर्ण वर्णन करने का साहस कौन कर सकता है, जिनकी शक्तियाँ स्वयं काल, कर्म तथा जीवों का स्वभाव हैं — वह शरीर जो भगवान् की अपनी योगमाया की सामर्थ्य से बढ़कर कुछ भी प्रकट नहीं करता? और फिर भी, मैत्रेय कहते हैं, अपनी ही वाणी को शुद्ध करने के लिए — जो, वे निष्कपट स्वीकार करते हैं, अन्य अपावन वार्ता से दूषित हो गई है — उन्होंने अपने ही अल्प ज्ञान तथा अपने गुरु की शिक्षा के अनुसार, भगवान् की महिमा गाने का प्रयास किया है।

ज्ञानी जन, वे आगे कहते हैं, घोषित करते हैं कि मनुष्य की वाणी की एकमात्र उपयोगिता भगवान् की स्तुति में है, तथा कानों की एकमात्र उपयोगिता विद्वानों द्वारा कहे गए श्रीहरि के अमृतमय प्रवचनों को सुनने में है। स्वयं ब्रह्मा, समस्त ऋषियों में प्रथम, योग से परिपक्व बुद्धि के साथ सहस्र दिव्य वर्षों तक चिन्तन करने पर भी भगवान् की महिमा को नहीं समझ सके। भगवान् की अपनी माया, मैत्रेय कहते हैं, उन्हें भी मोहित कर देती है जो स्वयं माया रचने में निपुण हैं — और यदि स्वयं भगवान् अपनी माया की गति को उस अर्थ में “नहीं जानते” जिस अर्थ में एक ज्ञाता किसी वस्तु को जानता है, तो अन्य कोई उसे कैसे समझ सकता है?

यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह ।

अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ४० ॥

*yato 'prāpya nyavartanta vācaś ca manasā saha ahaṁ cānya ime devās tasmai bhagavate namaḥ*

अर्थ: उस भगवान् को नमस्कार, जिनसे न केवल वाणी तथा मन, अपितु स्वयं रुद्र तथा अन्य देवता भी निराश होकर लौट आते हैं, उन तक पहुँचने में असमर्थ। (स्कन्ध 3, अध्याय 6, श्लोक 40)



विराट-शरीर के प्राकट्य का गान करने के पश्चात्, मैत्रेय विनम्रता तथा विस्मय में समापन करते हैं — यह स्वीकार करते हुए कि स्वयं ब्रह्मा भी, सहस्र दिव्य वर्षों के ध्यान के पश्चात्, भगवान् की महिमा को नहीं समझा सके, तथा उस भगवान् को अपना प्रणाम अर्पित करते हुए जिनसे वाणी तथा मन स्वयं, उन तक पहुँचने में असमर्थ होकर, लौट आते हैं (श्लोक 35-40)।

इस विस्मित प्रणाम-स्तवन के साथ — जो उस ऋषि द्वारा अर्पित है जिन्होंने अभी-अभी सम्पूर्ण अध्याय में उस रूप का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है, जिसे वे अब पूर्ण वर्णन से परे स्वीकार करते हैं — तृतीय स्कन्ध का षष्ठ अध्याय समाप्त होता है। सप्तम अध्याय तुरन्त आगे बढ़ेगा, जिसमें विदुर, जो सुनी गई सभी बातों से प्रसन्न हैं, मैत्रेय से आगे प्रश्न करते हैं: निर्गुण, अपरिवर्तनशील भगवान् को कैसे कभी कर्ता कहा जा सकता है?

## इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. असम्बद्ध शक्ति कुछ भी सिद्ध नहीं करती; केवल भगवान् का प्रवेश ही सामंजस्य लाता है। सृष्टि के तेईस तत्त्व भगवान् के प्रवेश से पहले उतने ही पुराने तथा उपलब्ध हैं जितने बाद में — अन्तर नया पदार्थ नहीं अपितु नया सहयोग है, जो केवल उनकी भीतरी उपस्थिति से सम्भव होता है (श्लोक 1-5)।
2. सृष्टि बाहर से निर्माण नहीं है; यह भीतर से रूपान्तरण है। विराट-शरीर भगवान् द्वारा उस प्रकार नहीं बनाया जाता जिस प्रकार एक शिल्पी किसी वस्तु का निर्माण करता है; यह तत्त्व स्वयं हैं, जो उनके द्वारा प्रविष्ट तथा उद्दीप्त होकर, विश्व-रूप में रूपान्तरित होते हैं — यह स्मरण कराते हुए कि भगवान् की सृजन-शक्ति अन्तर्वास द्वारा कार्य करती है, बाह्य संयोजन द्वारा नहीं (श्लोक 4-5)।
3. एक जीव की प्रत्येक क्षमता, अपने मूल में, उसे उधार दी गई दिव्य चेतना का एक अंश है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, यहाँ तक कि मन तथा अहंकार भी, यहाँ उन स्थानों के रूप में वर्णित हैं जहाँ विशिष्ट देवता विशिष्ट शक्तियाँ लेकर “प्रवेश” कर चुके हैं — यह सिखाते हुए कि हम जो भी सामर्थ्य व्यक्त करते हैं, दृष्टि से लेकर वाणी तथा विचार तक, वह न तो स्वतः उत्पन्न है और न ही स्व-स्वामित्व में है (श्लोक 12-26)।
4. सामाजिक वृत्ति, सम्यक् रूप से समझी जाए तो, आराधना है, केवल श्रम-विभाजन नहीं। चूँकि सभी चारों वर्ण तथा उनके व्यवसाय उसी विराट-शरीर से उत्पन्न होते हैं, प्रत्येक को अपने विशेष कर्तव्य के श्रद्धापूर्ण निर्वहन द्वारा हृदय की शुद्धि करने का आह्वान किया जाता है — प्रत्येक ईमानदार वृत्ति, भक्तिपूर्वक की गई, उस समान पिता की आराधना का एक साधन बन जाती है जिससे वह उत्पन्न हुई (श्लोक 30-34)।

5. भगवान् के विषय में सच्चा ज्ञान विनम्रता में समाप्त होता है, प्रभुत्व में नहीं। मैत्रेय, अभी-अभी चालीस श्लोकों का सटीक ब्रह्माण्ड-वर्णन देने के पश्चात्, आत्मविश्वास से नहीं अपितु स्वीकारोक्ति से समाप्त करते हैं — स्वयं ब्रह्मा भी सहस्र दिव्य वर्षों में इस महिमा को नहीं समझ सके — प्रत्येक श्रोता के लिए यह प्रतिमान प्रस्तुत करते हुए कि पावन ज्ञान का सही प्रत्युत्तर गहन श्रद्धा है, यह भाव नहीं कि “भगवान् को समझ लिया गया है” (श्लोक 35-40)।

## एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय की अपनी संरचना में ही कुछ शान्त शिक्षाप्रद है। मैत्रेय चौंतीस श्लोकों में लगभग वैज्ञानिक सूक्ष्मता से वर्णन करते हैं कि विराट-शरीर से प्रत्येक इन्द्रिय, प्रत्येक लोक तथा प्रत्येक सामाजिक वर्ग किस प्रकार उत्पन्न होता है — मुख, फिर तालु, फिर नासिका, फिर नेत्र, व्यवस्थित रूप से, देवता-दर-देवता, शक्ति-दर-शक्ति। इसे केवल एक प्राचीन सूची, एक प्रकार का ब्रह्माण्डीय शरीर-रचना पाठ मान लेना सरल होगा। परन्तु देखें कि मैत्रेय अपनी सूची पूर्ण होते ही क्या करते हैं: वे उस प्रभुत्व की उमंग में समापन नहीं करते जो मानो उन्होंने ब्रह्माण्ड को पूर्णतः समझा लिया हो। इसके विपरीत वे यह स्वीकार करने की ओर मुड़ते हैं कि यह सावधानीपूर्वक, श्लोक-दर-श्लोक वर्णन भी भगवान् के विषय में गहनतम सत्य को अछूता छोड़ देता है — कि स्वयं ब्रह्मा भी, सहस्र दिव्य वर्षों के पश्चात्, उसे समझने के निकट नहीं पहुँच सके। जिस ऋषि ने अभी-अभी हमें सबसे अधिक सिखाया, वे यह कहते हुए समाप्त करते हैं कि वे सबसे कम जानते हैं। यह मिथ्या विनम्रता नहीं है; यह भागवत की अपनी सम्यक् ज्ञान की परिभाषा है। सृष्टि के तन्त्र को विस्तार से समझना, और फिर भी उसके रचयिता के सम्मुख विस्मय में नतमस्तक हो जाना, न कि उन्हें समझा देने के सन्तोष में — यही, किसी एक ब्रह्माण्ड-श्लोक से बढ़कर, इस अध्याय की वास्तविक शिक्षा है।

## एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने शरीर या मन द्वारा बिना किसी सचेत प्रयास के किए जाने वाले किसी एक कार्य को देखें — एक ली गई साँस, एक विचार जो स्वतः उठता है, एक ध्वनि जो बिना आपकी इच्छा के अनुभव होती है। ऐसी सामर्थ्यों को केवल “अपनी” मानकर स्वीकार करने के स्थान पर, इस अध्याय की भावना में यह विचार करें कि प्रत्येक स्वयं एक उपहार है, कृपा द्वारा उधार दी गई शक्ति, न कि आपकी अपनी इच्छा से निर्मित। इस छोटे से अवलोकन को एक अर्पण बनने दें। अपने दिन में लौटने से पहले, रुकें और शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को देखने, सुनने अथवा सोचने के सबसे साधारण कार्य को भी उस भगवान् के प्रति कृतज्ञता के क्षण में बदलने दें जिनसे प्रत्येक ऐसी शक्ति अन्ततः आती है।

## उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का षष्ठ अध्याय, सबसे व्यापक सम्भव शब्दों में, उसी प्रश्न का उत्तर देता है जो देवताओं ने पंचम अध्याय के अन्त में उठाया था: सृष्टि वास्तव में कैसे आरम्भ होती है? भागवत जो उत्तर देता है वह स्वयं चलने वाला कोई तन्त्र नहीं है, अपितु भगवान् की अपनी अन्तर्वासी उपस्थिति है, जो बिखरे तथा शक्तिहीन तत्त्वों में प्रवेश करती है और उन्हें, काल की अपनी शक्ति द्वारा, उस एकल, तेजोमय विराट-शरीर में समेट लेती है जिससे इन्द्रियाँ, लोक, तथा मनुष्य-समाज की व्यवस्था स्वयं आकार लेती है। और फिर भी, इस विशाल संरचना को सावधानीपूर्वक, विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने के पश्चात्, मैत्रेय विजय में नहीं अपितु विस्मय में समापन करते हैं — विदुर को, तथा तब से प्रत्येक पाठक को, यह स्मरण कराते हुए कि भगवान् के रूप का सबसे सम्पूर्ण सम्भव वर्णन भी अब भी केवल विस्मय का निमन्त्रण है, उसका

स्थानापन्न कभी नहीं। मैत्रेय के वर्णन के भीतर शुकदेव का गहनतम उद्देश्य यहाँ स्पष्ट होता है: यह दिखाना कि भगवान् की सृष्टि की सच्ची समझ विनम्रता को प्रतिस्थापित नहीं करती अपितु उसे गहन करती है, विदुर को — तथा हमें — उस अगले प्रश्न के लिए तैयार करते हुए जो भागवत सप्तम अध्याय में उठाएगा: ऐसे भगवान् को कभी कर्ता कैसे कहा जा सकता है?

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

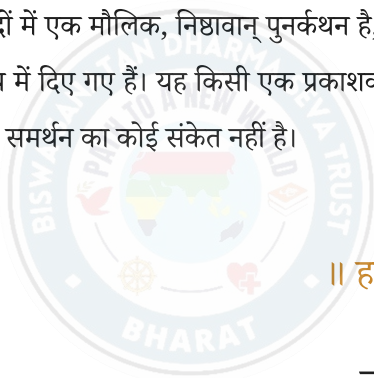
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

## सन्दर्भ तथा श्रेय

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, षष्ठ अध्याय, पृष्ठ 156–160।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-6-appearance-of-the-cosmic-body-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-6-appearance-of-the-cosmic-body-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट